International Journal of Enhanced Research in Educational Development (IJERED)
ISSN: 2320-8708, Vol. 5 Issue 4, July-August, 2017, Impact Factor: 1.554

नागार्जुन की कविता में व्यंग्य बोध

डॉ. कमलेश सरीन

एसोसिएट प्रोफेसर., हिन्दी विभाग., स्वामी श्रद्धानन्द कॉलेज., दिल्ली विश्वविद्यालय

परिचय

कवि नागार्जुन की कविता का काल बहुत लम्बा रहा है। इस दौरान कविताओं की शैलियों के कई रूप प्रचलित हुए – विशेष रूप से नई कविता और अकविता के। मनोविश्लेषण शास्त्र, अस्तित्ववाद जैसे दर्शनों की आड़ में घोर व्यक्तिवादी – अतिमानव, लघुमानव आदि मानवों के विभिन्न भेदों वाली या विद्रोहपरक जालिमता आदि से सम्बन्धित भारतीय जीवन एवं जन से दूर के अर्थ वाली – शब्दों के कोरे चमत्कार को लेकर अनेक रूपों वाली कविता के विभिन्न दौर चले। नागार्जुन अपनी सोच और समझ में इन दौरों से दूर ही रहे, क्योंकि उनका लक्ष्य एवं उनकी दृष्टि बिल्कुल साफ थी। साधारण जीन–जीवन की पीड़ा एवं दुःख–दर्द को वाणी देना उनकी रचनाधर्मिता का प्रमुख उद्देश्य एवं प्रतिपाध है।

नागार्जुन साधारण निर्धन किसान परिवार में पले–बसे थे। उन्होंने निर्धनता एवं अभावों के जीवन को भोगा है। वे अपनी कविताओं में स्वयं के बारे में स्पष्ट बोलते हैं–

''मैं दरिद्र हूँ
पुश्त पुश्त की यह दरिद्रता
कटहल के छिलके जैसी जीभ से
मेरा लहू चाटती आई
मैं न अकेला
मुझ जैसे तो लाख–लाख हैं।''

उपर्युक्त पंक्तियों के अनुसार स्पष्ट है कि वे भारतीय जीवन की निर्धनता को अपने जीवन मे भोगते हैं। गाँव की गरीब जनता – किसान, दलित एवं उपेक्षित लोगों की जिंदगी और समस्याएँ उनकी कविता का माध्यम बनी। उनकी समस्याओं के कारण के रूप में वे भारतीय सरकार, राजनीति, प्रशासन, सामन्तवाद, साम्राज्यवाद एवं पूंजीवाद को जिम्मेदार मानते हैं। अपनी कविताओं में प्रमुख रूप से भारतीय शासकों और अमीरों की मक्कारी और शोषण के भ्रष्टाचार, चालाकी, धूर्तता के चेहरे को बेपर्दा किया है। नेताओं के प्रति जनता की अन्ध–श्रद्धा एवं राजनीतिक ज्ञान से परिचय कराया है और स्पष्ट किया है कि निर्धनता के दुःख का प्रमुख कारण भारतीय नेता एवं प्रशासन है।

राजनीतिक व्यंग्य उनके रचनाधर्म का प्रमुख प्रतिपाध बन गया। इसके साथ–साथ धर्म के ठेकेदारों, नौकरशाहों, पुलिस अफसरों, लेखकों और लोलुप पुरुषों पर भी नागार्जुन जी के व्यंग्यों की बौछार हुई है। जिस प्रकार शोषण मूलक धर्म–व्यवस्था पर भक्ति–युग में कबीर के व्यंग्यों के बज्र टूटे थे, जिस प्रकार आधुनिक समाज व्यवस्था, अर्थ–व्यवस्था एवं राजनीति को भारतेन्दु, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला और मुंशी प्रेमचंद ने अपने व्यंग्य–वाणों से छलनी किया था उसी परम्परा के बेताज बादशाह श्री वैजनाथ मिश्र उर्फ नागार्जुन हैं।

स्वतंत्रता पूर्व कांग्रेसी नेताओं ने रामराज्य का स्वप्न लोगों को दिखाया था। वैसे भी अंग्रेजी शासन के विरुद्ध भारतीयों को सब कुछ सुनना अच्छा लगता था। स्वतंत्रता के बाद लोगों को अपनी सरकार से एक बहुत सत्यवादी अहिंसापरक, न्यायपरक एवं लोकोन्मुख सरकार की अपेक्षा थी। परन्तु स्वतंत्रता के बाद भी गैर जिम्मेदार स्वदेशी सरकार के भ्रष्टाचार, आपाधापी और लूट–खसोट को देखकर यहाँ की जनता का मोह–भंग हुआ था। इस मोह–भंग की पीड़ा को नागार्जुन ने भी बहुत भुक्ता है। स्वदेशी सरकार ने जनता का पाशविक दमन किया। जनता के साथ छल किया। इन्हीं सबकी प्रतिक्रिया नागार्जुन की कविता है। इस दृष्टि से उनकी 'तीनों बन्दर बापू के', 'शासन की बन्दूक', 'तुम रह जाते दस साल और', 'खड़ाऊँ की गद्दी पर', 'प्रजातंत्र का होम' इत्यादि कविताएँ देखी जा सकती हैं। महात्मा गाँधी जननायक थे। सत्यवादी–सैद्धांतिक और मूल्यों की राजनीति के कायल थे। परन्तु उनके अनुयायी इसके विपरीत थे। इसीलिए महात्मा गाँधी जैसे महामना भी व्यंग्य के शिकार हुए –

''बापू के भी ताऊ निकले तीनों बन्दर बापू के
सरल सूत्र उलझाऊ निकले तीनों बन्दर बापू के।''

नेहरू का शासन बंदूक की नोक पर चलने लगा। जनता के आक्रोश को दबाने के लिए सत्य और अहिंसा का सिद्धान्त पीछे छूट गया –

''सत्य स्वयं घायल हुआ
गई अहिंसा की चूक
जहाँ तहाँ दगने लगी
शासन की बन्दूक।''

फूट, बेईमानी, लफ्फाजी, घूसखोरी, लूट–खसोट का साम्राज्य हो गया। ऐसी स्थिति में 'सत्य' का हाल कवि ने प्रस्तुत कविता में वर्णित किया है :–

''सत्य को लकवा मार गया है
वह लम्बे काठ की तरह
पड़ा रहता है सारा दिन सारी रात
वह फटी फटी आँखों से
टुकुर–टुकुर ताकता रहता है
सारा दिन सारी रात।''

स्वतंत्रता के बाद भी हमारे देश के प्रथम प्रधानमंत्री इंगलैंड की महारानी की सेवा–सुश्रूषा एवं स्वागत में लगे हुए हैं –

''आओ रानी हम ढोयेंगे पालकी
यही हुई है राय जवाहर लाल की।''

नेहरू को शान्तिदूत कहा जाता है। परन्तु नागार्जुन की कविताएँ उनकी शांति–नीति की धज्जियाँ उड़ाती हैं। उनके राज्य के समय की हिंसा पुलिस राज, डण्डे और बंदूकों से जनता की आवाज को किस प्रकार दबाया जाता है। यह सब उनकी 'झण्डा' और 'पुलिस अफसर' कविताओं को पढ़कर देखिए :–

1. ''कदम कदम पर अश्रुगैस है, बात–बात पर लाठी–गोली
पुलिस लाड़िली खेल रही है, जन–जीवन से खूनी होली।
इकतरफा फुफकार रहा है, हर लाल किले का भारी झण्डा
ओ बिहार, क्या देख रहा तू। खाता चल 'नेहरू का डण्डा'।''
2. ''जिन्हें अँगूठा दिखा–दिखा कर मौज मारते डाकू
हावी है जिनके पिस्तौलों पर गुण्डों के चाकू।
चाँदी के जूते सहलाया करती जिनकी नानी
पचा न पाये हैं जो अब तक नए हिंद का पानी।''

आजादी के बाद के दो दशकों में भूख, बेकारी और अकालों का बड़ा बोलबाला था। भारत गाँवों का देश है। निर्धनता और बेकारी हमारी एक बड़ी समस्या रही है। सरकारों की पूंजीवादी नीति और उसके मंत्रियों के भ्रष्टाचार तथा सरकारी कर्मचारियों की घसखोरी से लूट का शासन कायम हो गया। गरीब जनता की बात सुनने वाला कोई नहीं था। पंचवर्षीय योजनाएँ और बीस सूत्री कार्यक्रम छल, छद्म के रूप बनते थे। ठोस कार्यक्रम और सुनिश्चित योजनाएँ नहीं बनीं। जिनके परिणामस्वरूप एक जंगलराज की स्थिति रही। इन्हीं का साकार रूप आप नागार्जुन की निम्नलिखित पंक्तियों में देख सकते हैं –

''मँडराती है यम की नानी खेतों में खलिहानों में
भूख–अकाल–महामारी की फसल उगी मैदानों में।''

''सौ का खाना एक खा रहा आती नहीं डकार
नेहरू के इन चेलों की लीला है अपरम्पार
बीच रोड़ पर मचल रही है तीस हजारी कार।''
''भारत सेवक जी को था अपनी सेवा से काम

खुला चोर बाजार बढ़ा चोकर चूनी का दाम
भीतर झुरा गई ठठरी बाहर झुलसी चाम
भूखी जनता की खातिर आजादी हुई हराम।''

पंचवर्षीय योजनाओं की थका देने वाली लम्बी–चौड़ी अवधि और अपने परिणाम में निरर्थक रूप निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है –

''बताऊँ
कैसी लगती है
पंचवर्षीय योजना
हिडिम्बा की हिचकी
सुरजा की जम्भाई।''

हर वर्ष बजट पास होते हैं और नये–नये कर लगते हैं। सभी बजटों का यही हाल है। कम आमदनी वाली जनता की कमर तोड़ दी इन्हीं बजटों ने। नागार्जुन का व्यंग्य देखिए :–

''ताड़ का तिल है, तिल का ताड़ है
पब्लिक की पीठ पर बजट का पहाड़ है।''

15 अगस्त और 26 जनवरी को सरकार बड़ी धूमधाम से मनाती है। ये दिन हर साल स्वतंत्रता की याद दिलाते हैं। परन्तु लोगों को स्वतंत्रता प्राप्ति का सुख नहीं मिला। आर्थिक आजादी नहीं मिली। धन्ना सेठ और मंत्रीगण ही अमीर होते गए। गरीबी–अमीरी का अन्तर बढ़ता गया। इसी सच्चाई से रू–ब–रू होती है नागार्जुन की कविता की ये पंक्तियाँ :–

''किसकी है जनवरी, किसका अगस्त है
कौन यहाँ सुखी, कौन यहाँ मस्त है,
सेठ ही सुख है, सेठ ही मस्त है।
मंत्री ही सुखी है, मंत्री ही मस्त है।
उसी की है जनवरी, उसकी आ अगस्त है।''

नागार्जुन की कलम के व्यंग्य से जनता पार्टी की राजनीति, जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रांति और प्रगतिवादियों की पार्टियाँ भी नहीं बची। नागार्जुन अपने जीवन के साथ–साथ चलने वाले राजतंत्र, सरकारी तंत्र, समाज तंत्र, विपक्ष–तंत्र, धर्म–तंत्र आदि के तात्कालिक रूप को गहराई से समझते–परखते हैं। कुछ लोग उनकी कविता पर तात्कालिकता का आरोप लगाते हैं। हमारे विचार से तात्कालिकता जीवन से आँख मूँदकर शाश्वत मूल्यों की बात करने वाले साहित्यकार, जनता के सच्चे प्रतिनिधि नहीं हो सकते।

शाश्वत मूल्यनुमा उपदेशों से आज का समाज नहीं चल रहा है। यह तो यथार्थ जीवन की सच्चाई से मुँह मोड़ना या कहिए एक प्रकार का पलायनवाद है। समाज में व्याप्त राजनीतिक दरिंदगी, सामाजिक अंधविश्वास, आर्थिक भेदभावों को उजागर किए बिना किसी समाज या देश का विकास नहीं हो सकता। नागार्जुन इस सच्चाई को समझते थे। इसीलिए वे किसी गंभीर दर्शन की प्रतिकृति होने से कविता को बचाते हैं। देश और जनता के सामने छोटी–छोटी सच्चाइयाँ सामने रखकर सभी तरह के तंत्रों को नंगा करते हैं। इसी कड़ी में उन्होंने सभी नेताओं और पार्टियों को आड़े हाथों लिया – जयप्रकाश की सम्पूर्ण क्रांति पर व्यंग्य कसते हुए नागार्जुन ने कहा है –

''काश क्रांतियाँ उतनी आसानी से हुआ करती
काश क्रांतियाँ योगी, ज्योतिषी या जादूगर के चमत्कार हुआ करती।''

जनता पार्टी शासन पर व्यंग्य से ढोल की पोल सुनिए :–

''खिचड़ी विप्लव देखा हमने
भोगा हमने क्रांति विलास
अब भी खत्म नहीं होगा क्या
पूर्ण क्रांति का भ्रांति विलास।''

नागार्जुन सच्चे अर्थों में प्रगतिशील विचारधारा के कवि हैं। किसानों की जिंदादिली और स्वाभिमान उनके व्यक्तित्व का गुण है। वे प्रगतिशीलों में घर करती बुराइयों को भी नजरअंदाज नहीं करते। उनकी एक कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिएः–

''प्रगतिशील पार्टियों के दलपति तक

हमसे ठकुर सहुाती चाहते हैं
अपनी नुक्ताचीनी सुनकर
वे अन्दर ही अन्दर बुरा मान जाते हैं।''

प्रगतिशीलता का दर्शन झाड़ना और दल की ताकत का लाभ उठाना ही प्रगतिशीलों का कार्य रह गया है। प्रगतिशीलता के सिद्धांतों को महात्मा गाँधी और नागार्जुन की तरह अपने चरित्र एवं कर्म में ढालना सीखना चाहिए।

कम्यूनिष्ट विचारशील लोग क्रांति, समता, प्रगति और जनवाद की बातें बहुत करते हैं। वास्तविकता में कुछ नहीं होता। इसी विचार को उन्होंने 'वो हमें चेतावनी देने आए थे' कविता में व्यंजित करते हैं। उनकी स्वीकृति है –

''क्रांति, समता, प्रगति, जनवाद
आजीवन हमने
इन शब्दों से काम लिया है।
वे हमें चेतावनी दे गए हैं।''

राजनीतिज्ञों की संवेदनहीनता से सरकारी कर्मचारियों एवं अफसरों ने भी कम सीख नहीं ली है। राशन के दफ्तर, कोर्ट एवं विभिन्न सरकारी संस्थानों के अफसरों के भ्रष्टाचार एवं संवेदनशीलता को नागार्जुन ने अपनी कविताओं में व्यंग्य का शिकार बनाया है :–

''नदी के पेट में चला गया है समूचा गाँव
बेघर हो गए हैं हजारों लोग
पगला गई है बूढ़ी गड़क
छोड़कर सिगार का ढेर–ढेर धुआँ
कहां तक राएंगे आप?
प्रलय नहीं होगा तो सृष्टि कैसे होगी।''

जनता को और गरीब बनाने वाले अमीरों पर व्यंग्य :–
''बताऊँ
कैसे लगते हैं –
दरिद्र देश के धनिक''

कोठी–कुढ़ब तन पर मणिमय आभूषण बुद्धिजीवी और कलाकारों के खोखलेपन और दिखावटीपन की भी नागार्जुन ने खबर ली है। वे लेखकों की पोल खोलते हुए उन पर व्यंग्य से कहते हैं –

''कलाकार को लग गया प्रवचन का चस्का
सरल को जटिल बनाने का रोग
यह भी ठीक है
वह भी ठीक है
'हाँ' भी कह लो
जँच जाए तो 'ना' भी कह लो।''

अर्थात् बुद्धिजीवी एवं कलाकार दूसरों को भाषण देने में माहिर हैं। अवसर को ताड़ कर ठीक और गलत का निर्णय देते हैं। नई कवितावादियों ने मानवों के कई भेद किए। उन पर चुटकी लेते हुए लिखते हैं –

''कवि हूँ पीछे, पहले तो मैं मानव ही हूँ
अतिमानव या लोकोत्तर किसे कहते हैं – नहीं जानता।''

ईश्वरवाद और देवी देवताओं में विश्वास के नाम पर बड़ी लूट–खसोट होती है। साधारण जनता की इस कमजोरी का चालाक तथाकथित धार्मिक लोग बड़ा लाभ उठाते हैं। नागार्जुन ने ईश्वरों और देवियों का मखौल उड़ाते हुए कई कविताएँ लिखी हैं। 'काली माई', 'मन करता है...', 'कल्पना के पुत्र हे भगवान' और 'भिक्षुणी' ऐसी ही कवितायें हैं, इनमें कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :–

'मन करता है...
मैं उन अगस्त्य–सा पी डालूँ सारे समुद्र को

अंजलि से
उस अतल–वितल में तब मुझको
मुर्दा भगवान दिखाई दे
उस महामृतक को ले आऊँ फिर इस तट पर
अन्त्येष्टि करूं, लकड़ी तो बेहद मंहगी है
इस बालू में दफना दूँ।''

काली माई के माध्यम से पूजा पाठ और अंध विश्वास पर व्यंग्य :–

''कितना खून पिया है जाती नहीं खुमारी।
सुर्ख और लम्बी है मइया जीभ तुम्हारी
मुण्डमाल के लिये गरीबों पर निगाह है,
धनपतियों के लिए दया की खुली राह है।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि नागार्जुन जनता के दुःख दर्द के सच्चे हिमायती के रूप में हमारे सामने हैं। जनता को दुःख पहुँचाने वाले किसी भी शोषक धूर्त, नौकरशाह, धर्म, राजनीति आदि को उन्होंने नहीं छोड़ा है। ''नागार्जुन की चुनी हुई रचनाओं की भूमिका'' लेखक श्री शिव कुमार मिश्र नागार्जुन की व्यंग्य–शक्ति की भूरी–भूरी प्रशंसा करते हुए लिखते हैं, ''बहुत बड़ी ताकत है, उनके ये व्यंग्य, बहुत बड़ी सम्पदा है, यह उनकी, उनके मिजाज के सर्वथा अनुरूप, उनकी सामर्थ्य की पूरी अनुकूलता में। आधुनिक कविता के व्यंग्य लेखकों में वे सिरमौर हैं। राजनीति, समाजतंत्र, अर्थनीति, शासन–तंत्र, धर्मनीति, देश–विदेश के नेता, समाज के प्रभु, नौकरशाह, राजनीतिक छुटभैये, चापलूस, बटमार, साधु–सन्यासी, पीर–फकीर, पण्डित–मौलवी, सब उनके व्यंग्यों की चपेट में आए हैं और सबकी असलियत उन्होंने खोली है। वे आधुनिक कविता के कबीर हैं।''

प्रगतिशीलों की आलोचना में लिखी गई कविताओं के आधार पर कुछ आलोचक कहते हैं कि नागार्जुन भटक गए हैं। सच्चाई को उजागर करना, उनके व्यंग्य–कर्म का धर्म रहा है। 'भारतेन्दु' कविता लिखते समय उन्होंने शपथ ली थी –

''लो आज तुम्हारी याद में लेता हूँ मैं यह शपथ।
अपने को बेचूंगा नहीं चाहे दुख झेलूँ अकथ।''

इस धर्म का उन्होंने आजीवन निर्वाह किया और अन्ततः उनसे जब सहन नहीं हुआ तब समता, प्रगति, जनवाद, क्रांति रूपी खूँखार चेहरों ने प्रगतिवादियों की ढोल की पोल को खोल कर उनके मुँह पर थूक ही दिया। क्रांति समता आदि आदर्शपरक विचारों का प्रगतिवादी पार्टी के लोगों ने बड़ा दुरुपयोग किया है। आखिर कब तक वे इन बड़े सिद्धांतों का भाषण देते रहेंगे। 'वो हमें चेतावनी देने आये थे' कविता प्रगतिवादियों की कथनी और करनी को दूध और पानी की तरह साफ कर देती है।

निष्कर्ष

हिन्दी क्षेत्र की जनता के सदियों के सुख–दुःख उत्कट आकांक्षाएं परिहासपूर्ण जीवन अनुभवों की अनुगूँज नागार्जुन व्यंग्य कविताओं में सुनाई देता। नागार्जुन की कविताओं में जनजीवन के सभी क्षेत्रों, प्रान्तों, व्यवसायों और चरित्रों की बोली–बाणी के दर्शन होते हैं। व्यंग्य का ऐसा स्वाभाविक आनन्द वर्णन और विकृति पर सांघातिक प्रहार के एक साथ शायद ही कहीं देखने को मिले।

संदर्भ ग्रंथ

नागार्जुन रचनावली (भाग–2)
नागार्जुन, तुमने कहा था।
नागार्जुन, इस गुबार की छाया में।
नागार्जुन, तालाब की मछलियां।
नागार्जुन, खिचड़ी विप्लव देखा हमने।